स्रष्टा और सृष्टि एक है

परमात्मा के जैसे-जैसे निकट तुम आओगे, तुम पाओगे, यहां परमात्मा में संसार और मोक्ष एक ही घटना है। यहां बनानेवाला और बनायी गई चीजें दो नहीं हैं; स्रष्टा और सृष्टि एक है। वहां तुम ऐसा न पाओगे कि यह वृक्ष अलग है परमात्मा से; तुम इस वृक्ष में परमात्मा को ही हरा होते हुए पाओगे। तुम ऐसा न पाओगे कि यह चट्टान परमात्मा से भिन्न है; तुम इस चट्टान में परमात्मा को ही सोता हुआ पाओगे। तुम शत्रु में भी देखोगे, वही है; मित्र में भी देखोगे, वही है। जन्म में वही आता है; मृत्यु में वही विदा होता है।

परमात्मा एक है; वहां सब विरोध लीन हो जाते हैं। जैसे सब नदियां सागर में गिर जाती हैं, ऐसा सब कुछ परमात्मा में गिर जाता है। और तुम्हारे मन ने बड़े इन्तजाम से जो कबूतरखाने बनाये थे, जिनमें जगह-जगह तुमने खंड कर दिये थे, चीजों को बांट दिया था, लेबिल लगा दिये थे—उसे लेबिल लगाने को तुम ज्ञान कहते हो—हर चीज का नाम चिपका दिया था, हर चीज के गुण लिख दिये थे; यह जहर और यह अमृत—और अचानक परमात्मा में जाकर तुम पाते हो, जहर अमृत है, अमृत जहर है; सब एक है; कुछ चुनाव योग्य नहीं है—सभी उससे है। बुरा और भला दोनों उसी से आते हैं। संत और शैतान दोनों उसी से पैदा होते हैं। राम और रावण दोनों उसी की लीला के अंग हैं—राम ही नहीं, रावण भी; अन्यथा रावण कहां से आयेगा?

जैसे ही तुम परमात्मा के पास जाते हो, तुम्हारी सब कोटियां टूटती हैं। मन का सब ज्ञान उखड़ जाता है। परमात्मा

परमात्मा में संसार और मोक्ष एक ही घटना है। यहां बनानेवाला और बनायी गई चीजें दो नहीं हैं; स्रष्टा और सृष्टि एक है। वहां तुम ऐसा न पाओगे कि यह वृक्ष अलग है परमात्मा से; तुम इस वृक्ष में परमात्मा को ही हरा होते हुए पाओगे

भयंकर आंधी की तरह आता है, झकझोर डालता है तुम्हारे सब ज्ञानों को, धूल-धूसरित कर देता है। परमात्मा महान अग्नि की तरह आता है, जला डालता है सब कचरे को, सब शब्दों को, सब सिद्धांतों को, सब शास्त्रों को। परमात्मा ऐसा आता है कि तुम्हें बस नग्न और शून्य छोड़ जाता है। उस घड़ी में तुम जो जानोगे, कैसे वापस कबूरतखानों में रखोगे उसे? जिसने एक बार जान लिया, परमात्मा की एक झलग जिसको आ गई, फिर मन की सारी की सारी व्यवस्था व्यर्थ हो जाती है। उसी मन से बोलना है। उसी मन से कहना है।

इसलिए कबीर कहते हैं 'पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान'। कैसे कहें, क्या है उस परमब्रह्म का तेज? कौन सी उपमा दें? किन शब्दों का सहारा लें?

'कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।।' कबीर कहते हैं, कहने में शोभा नहीं है, बात बिगड़ जायेगी; जो भी कहेंगे वही अशोभन होगा।

'कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।' बस एक ही प्रमाण है उसका, और वह है : देख लेना। जिसने देख लिया, देख लिया; जिसने नहीं देखा, नहीं देखा। नहीं देखा है जिसने, उसके लिए देखने वाला कोई भी प्रमाण नहीं देख सकता, समझा नहीं सकता।

इसलिए आस्तिक हमेशा नास्तिक से विवाद में हार जायेगा। लाख उपाय करो, आस्तिक जीत नहीं सकता। आस्तिक हारेगा विवाद में। विवाद में नास्तिक ही जीतेगा। उसका कारण है क्योंकि नास्तिक उस जगत की बात कर

रहा है जहां विवाद की सार्थकता है, जहां तर्क संगत है। आस्तिक अतर्क्य की बात कर रहा है, जहां तर्क असंगत है। तो आस्तिक तो हारेगा ही। इसका यह मतलब नहीं है कि कोई आस्तिक नास्तिक से हारकर नास्तिक हो जायेगा। झूठा आस्तिक हारकर नास्तिक हो जायेगा; सच्चा आस्तिक हारकर भी और गहरा आस्तिक हो जायेगा, क्योंकि सच्चा आस्तिक हार और जीत जानता ही नहीं। वह हंसेगा। वह नास्तिक के तर्क से नाराज न हो जायेगा; वह नास्तिक क तर्क से हंसेगा। नास्तिक के प्रति उसे क्रोध न उठेगा, क्योंकि वह तो आस्तिक का लक्षण ही नहीं है; नास्तिक के प्रति महाकरुणा उठेगी। वह नास्तिक को तर्क काटकर सिद्ध करने की कोशिश भी न करेगा। अगर कुछ भी हो सकता है तो एक ही घटना काम की हो सकती है : वह नास्तिक को प्रेम करेगा। क्योंकि जो शब्द से नहीं कहा जा सकता, अब उसको कहने का एक ही उपाय है : वह है प्रेम। और जो तर्क से नहीं कहा जा सकता, अब उसको समझाने की एक ही विधि है : वह करुणा है। और जिसका अब बताने का, विवाद से प्रमाण देने का कोई उपाय नहीं, उसका एक ही उपाय है कि वह खुद ही प्रमाण हो।

हम जीवन में उपमा से ही समझते हैं। कोई आदमी कहता है कि मैंने एक बड़ा सुंदर फूल देखा जंगल में, वैसा फूल यहां नहीं होता—तो तुम पूछते हो, कुछ उपमा, वह किसी फूल जैसा है : गुलाब जैसा, चमेली जैसा, चंपा जैसा

आस्तिक के पास प्रमाण नहीं होते; आस्तिक स्वयं प्रमाण है। इसलिए अगर आस्तिक को समझना हो तो तर्क से तुम उसके पास पहुंच ही न पाओगे। उसके पास तो पहुंचने का रास्ता है, और वह सुवास किसी दिन किसी अन-अपेक्षित क्षण में तुम्हारे नासापुटों में भर जाये। क्योंकि अन्यथा, कहता हूं अन-अपेक्षित क्षण, क्योंकि अन्यथा तो तुम बहुत सुरक्षित हो। तुमने सब संवेदनशीलता बन्द कर रखी है। और आस्तिकता को जानने के लिए तो बड़ी नाजुक संवेदनशीलता चाहिए। वह फूल किसी और लोक का है। वह फूल अदृश्य है। उसकी सुवास अतिसूक्ष्म है, महासूक्ष्म है। अगर तुम संवदेनशील होओगे तो ही थोड़ी सी झलक तुम्हें मिलेगी। उसकी रोशनी ऐसी नहीं है कि तुम्हारी आंखों को चका-चौंध से भर दे; उसकी रोशनी बड़ी शीतल है। अगर तुम आंख बंद करके बैठ सकोगे आस्तिक के पास, तो ही तुम उसकी रोशनी देख सकोगे, क्योंकि रोशनी आंखों से देखी जानेवाली रोशनी नहीं; उसकी रोशनी तो आंख बंद करके ध्यानस्थ दशा में ही जानी जा सकती है।

'पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान। कहिवे को सोभा नहीं, देखा ही परमान।।' कबीर कहते हैं, शोभा ही नहीं कहने की; कहना अशोभन है। जो कहा नहीं जा सकता, उसे कहकर जो प्रतिबिम्ब सुननेवालों के मन में बनेगा; वह बड़ा अन्याय है; वह परमात्मा के साथ बड़ा अन्याय है। क्योंकि सुननेवाले कोई प्रतिमा बना लेंगे, जिससे कि परमात्मा का कोई भी संबंध नहीं, दूर का भी नाता-रिश्ता नहीं। वे कुछ और ही समझकर लौट जायेंगे। उनकी समझ एक तरह की नासमझी होगी।

इसलिए ज्ञानी की सारी चेष्टा यह है कि कैसे तुम्हारी आंखें खुल जायें; ी नहीं कि कैसे तुम तर्क के द्वारा तृप्त कर दिये जाओ। तर्क से तुम तृप्त भी हो जाओ तो वह तृप्ति वैसे ही होगी जैसे तुम प्यासे थे और पानी के संबंध में किसी ने बहुत तर्क से सिद्ध कर दिया कि पानी है; और उसने सारा पानी का विज्ञान समझा दिया कि पानी कैसे बनता है; उसने पानी का फारमूला, महामंत्र दे दिया : एच टू ओ; उसने बता दिया कि उद्जन के दो कण, अक्षजन का एक कण, तीन कण से मिलकर पानी बनता है। सब बात ठीक है। लेकिन प्यास न बुझेगी। एच टू ओ से कहीं प्यासी बुझी है? राम-राम जपने से भी न बुझेगी। वह भी एच टू ओ है। 'देखा ही परमान।' आंख चाहिए!

तो ज्ञानी के पास न तो तर्क खोजने जाना, न प्रमाण खोजने जाना; आंख खोजने जाना।

'एक कहौं तो है नहीं'—अब कबीर अपनी दुविधा कहते हैं। तुम्हारी दुविधा है कि कैसे परमात्मा को जानें; ज्ञानी की दुविधा है कि कैसे परमात्मा को कहें। जान तो लिया...।

'एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।' कहते हैं कबीर, दो कहूं तो गाली हो जायेगी, और एक कहूं तो है नहीं।

दुविधा तुम समझ सकते हो; क्योंकि तुम कहोगे, सीधी-सी बात है : अगर दो कहना ठीक नहीं तो एक कहने से काम चल जायेगा। यहीं अड़चन है। क्योंकि एक की भी सार्थकता तभी है जब दो होता हो। एक का क्या मतलब होगा अगर दो हो ही न? कम-से-कम दो को परिकल्पित करना पड़ेगा, तभी तो एक में कोई अर्थ होगा। अगर तुमसे पूछा जाये कि दो, तीन, चार, पांच सारी संख्याएं खो गईं, सिर्फ एक संख्या बची—उसका क्या अर्थ होगा? क्या कहोगे तुम जब कहोगे एक? तुमसे कोई पूछ बैठेगा, मतलब? तो तुम्हें तत्क्षण दो को भीतर लाना पड़ेगा; तुम्हें कहना पड़ेगा, जो दो नहीं। लेकिन दो तो है ही नहीं। तो एक ही कहने में कितना सार है? इसलिए तो हिंदुओं ने बड़े श्रम के बाद 'अद्वैत' शब्द खोजा। यह दुविधा के भीतर बड़ी चेष्टा करनी पड़ी। तो, न तो वे कहते हैं, ब्रह्म एक है; न वे कहते हैं, दो है। वे कहते हैं कि इतना समझ लो कि दो नहीं है। अद्वैत का अर्थ हुआ : दो नहीं। तो हम साधारणतः कहेंगे, 'भले मानस, एक ही क्यों नहीं कह देते? ऐसा सिर के पीछे से घुमाकर कान क्यों पकड़ते हो? सीधे क्यों नहीं पकड़ लेते हो?' अड़चन है : एक कहने में डर है, क्योंकि एक में अर्थ ही तब होता है, जब दो की संख्या साथ हो। और उस पारब्रह्म के अनुभव में दो की कोई सम्भावना नहीं है तो जहां दो ही नहीं है, वहां एक की क्या सार्थकता?

'एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि।' और अगर दो कहूं, तब तो गाली हो गई। इसलिए तो कहते हैं, 'कहिवे तो सोभा नहीं।' क्योंकि दो से बड़ा झूठ क्या होगा? उस परमात्मा में दो है ही नहीं।

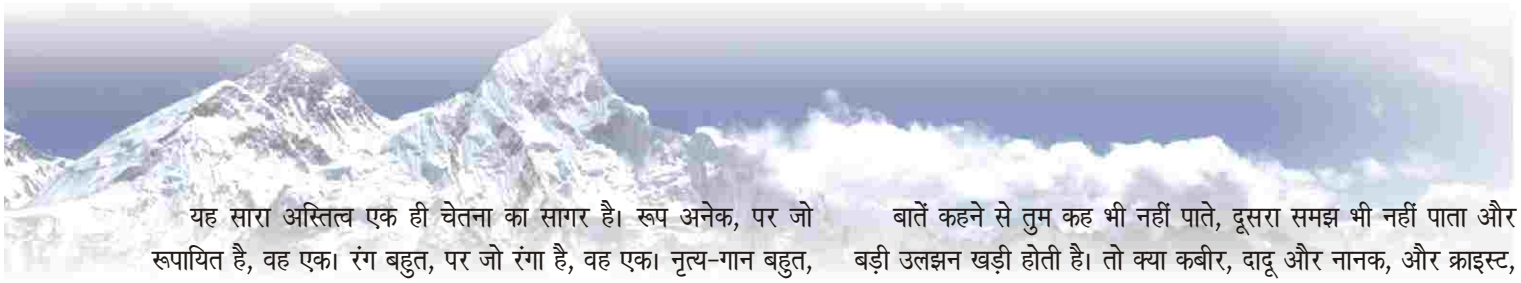

यह सारा अस्तित्व एक ही चेतना का सागर है। रूप अनेक, पर जो रूपायित है, वह एक। रंग बहुत, पर जो रंगा है, वह एक। नृत्य-गान बहुत, पर जो नाच रहा है, वह एक; जो गा रहा है वह एक। अनेकता परिधि पार है, और सुंदर है अपने-आप में। और जिस दिन तुम एक को पहचान लोगे उस दिन अनेकता में भी उसकी ही पायल की झनकार सुनाई पड़ेगी; उस दिन हर फूल-पत्ती उसी की खबर लायेगी; हर पक्षी उसी का गीत गायेगा। उस क्षण जो भी हो रहा है, जहां भी हो रहा है, सभी उसका है। अचानक जैसे एक परदा उठ जाता है प्राणों से, सब पारदर्शी हो जाता है, और हर चीज के भीतर से वही खड़ा दिखाई देने लगता है।

पर एक अड़चन है शब्दों में।

'एक कहौं तो है नहीं, दोय कहौं तो गारि। है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।।' और कबीर कहते हैं, बहुत विचारा, बहुत सोचा, बहुत उपाय बनाये, बहुत तरह से कोशिश की—अब इतना ही कहना ठीक है कि 'है जैसा तैसा रहे।' जैसा है बस वैसा ही है। उसकी किसी से कोई उपमा नहीं हो सकती, कोई तुलना नहीं हो सकती। उसकी तरफ कहीं से भी कोई संकेत नहीं किया जा सकता, कोई अनुमान काम न करेगा।

हम जीवन में उपमा से ही समझते हैं। कोई आदमी कहता है कि मैंने एक बड़ा सुंदर फूल देखा जंगल में, वैसा फूल यहां नहीं होता—तो तुम पूछते हो, कुछ उपमा, वह किसी फूल जैसा है : गुलाब जैसा, चमेली जैसा, चंपा जैसा? तुम यह पूछ रहे हो कि कुछ तो इशारा दो ताकि मैं अनुमान कर सकूं कि कैसा है। कमल जैसा? आखिर किसी तो फूल जैसा होगा? कुछ तो तालमेल किसी फूल से होता होगा? अगर एक से न होता हो तो तुम ऐसा कहो कि गंध गुलाब जैसी, रंग चंपा जैसा, रूप कमल जैसा—कुछ तो कहो, तो अंदाज तो लगे।

लेकिन परमात्मा के संबंध में कोई उपमा नहीं; क्योंकि वह अकेला ही है। उस जैसा बस वही है। इसलिए कहीं से भी तो कोई द्वार नहीं मिलता कि संकेत किया जा सके।

'है जैसा तैसा रहे, कहै कबीर विचारि।' बस, वह अपने जैसा है। पर यह भी कोई कहना हुआ? यह तो बात वहीं की वहीं रही। कह दिया कि बस अपने जैसा—इससे सुननेवाले को क्या समझ पड़ा? जिसको बताते थे, उसका कौन-सा बोध बढ़ा? कुछ बात न बनी।

पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक, आधुनिक विचारक, विट्गिंसटीन ने एक वचन लिखा है। विट्गिंसटीन की किताबें इस सदी की महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण किताबों में हैं। अगर दस महत्वपूर्ण किताबें इस सदी की चुनी जायें, तो विट्गिंसटीन की किताब उन दस में एक होगी। विट्गिंसटीन कहता है कि 'दैट विच कैन नॉट बी सेड शुड नॉ बी सेड'—जो नहीं कहा जा सकता, कृपा करके उसको कहो ही मत। जो नहीं कहा जा सकता, वह नहीं कहा जा सकता—यह भी मत कहो। विट्गिंसटीन यह कह रहा है कि इस तरह की की बातें कहने से तुम कह भी नहीं पाते, दूसरा समझ भी नहीं पाता और बड़ी उलझन खड़ी होती है। तो क्या कबीर, दादू और नानक, और क्राइस्ट, और बुद्ध, और कृष्ण कहना बंद कर दें, विट्गिंसटीन की सलाह मान लें? माना कि उनके कहने से बड़ी उलझन पैदा होती है; लेकिन उस उलझन का कष्ट उठाने योग्य है। क्योंकि अगर वे बिलकुल ही चुप रह जायें, तो जो कहकर नहीं बताया जा सका, कह-कहकर भी जिसे तुम न समझ पाये, वह क्या बुद्धों के चुप रहने से तुम समझ जाओगे? चुप्पी तो तुम्हारे लिए बिलकुल ही अनजानी भाषा है। इससे तो तुम्हें भला भ्रांति होती हो, चुप्पी से तो भ्रांति तक भी न होगी। चुप बैठे बुद्ध को तो तुम पहचान ही न पाओगे। और अगर बुद्ध चुप रह जायें, तो तुम्हारे इस लोक में, कौन लायेगा उसकी खबर जिसकी खबर नहीं दी जा सकती? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हारे हृदय को तीर मारेगा? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हें जगायेगा कि एक यात्रा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है? तुम्हारे अंधेरे में कौन तुम्हें चौंकायेगा कि यही जीवन नहीं है? कौन तुम्हारी पीड़ा, दुख और संताप में तुमसे कहेगा कि यही सब कुछ नहीं है; हम ऐसा लोक भी जानते हैं जहां कोई संताप नहीं है, कोई दुख नहीं है, कोई पीड़ा नहीं। कौन तुम्हें खबर देगा मुक्ति की—तुम्हारे कारागृह में?

सच है, विट्गिंसटीन ठीक कहता है कि जो नहीं कहा जा सकता, वह न ही कहा जाये। लेकिन फिर भी उचित नहीं है। जो नहीं कहा जा सकता, न ही कभी कहा गया है, उसे कहना होगा, बार-बार कहना होगा। ना-समझी भी पैदा होगी तो उससे, तो भी खतरा मोल लेना होगा, जोखिम उठानी पड़ेगी। क्योंकि हजार सुनें, नौ सौ निन्यानबे कुछ भी न समझ पायें, पर किसी एक के हृदय में कोई तीर चुभ जाता है; अनकहे हुए की भी थोड़ी-सी झलक आ जाती है; एक नई आकांक्षा का जन्म हो जाता है। शुरू-शुरू में बड़ी धुंधली, कुछ भी साफ नहीं; जैसे सुबह का धुंधलका छाया हो—लेकिन धीरे-धीरे जैसे-जैसे पैर संभलते हैं, वैसे-वैसे धुंधलका हटने लगता है; जैसे-जैसे आंख संभलती है, देखते-देखते-देखते जहां कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा था, वहां उस अनंत की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। संत असंभव की कोशिश करते हैं, क्योंकि परमात्मा असंभव है। परमात्मा से ज्यादा सरल कुछ भी नहीं, उससे ज्यादा असंभव कुछ भी नहीं। वह चारों तरफ चौबीस घड़ी मौजूद है, और फिर भी तुम उसे छू नहीं पाते। सब तरफ से तुम्हें उसने घेरा हुआ है, फिर भी तुम्हें उसके स्पर्श का कोई पता नहीं चलता। तो माना कि संतों के वचन विज्ञान की कसौटी पर सही नहीं उतर सकते, उनके वचन बेबूझ रहेंगे, अतर्क्य रहेंगे। तर्क की कसौटी पर संतों के वचन कसे नहीं जा सकते, लेकिन इसमें कसूर संतों के वचन का नहीं है, तर्क की कसौटी का है।

यह सारा अस्तित्व एक ही चेतना का सागर है। रूप अनेक, पर जो रूपायित है, वह एक। रंग बहुत, पर जो रंगा है, वह एक

— ओशो

सुनो भाई साधो, बीसवां प्रवचन

(पूरा प्रवचन टेप पर भी उपलब्ध है)